Research Papers

डॉ. तेजपाल चौधरी की हिंदी कविताओं में व्यंग्यात्मक आक्रोश

डॉ. शशिकांत सोनवणे 'सावन'
सहायक प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
प्रताप महाविद्यालय, अमलनेर (महाराश्ट्र)

प्रस्तावना :–

प्रसिद्ध भाशाविद् एवं हिंदी के वरिश्ठ साहित्यकार डॉ. तेजपाल चौधरी अपनी चिंतन और व्यंग्य प्रधान शैली से परिचित है। उनकी मौलिक एवं चर्चित रचनाऍं हैं कालचक्र, स्वाति की बुॅंद, मशाल जलती रहे (एकांकि), आओ लौट चले, सांझ हो गई, नेहर छुटा जाए, महात्मा के ऑसू (उपन्यास), कुंभकर्ण सो रहा है, चौराहे पर गांधी (कविता संग्रह), समाज भाशा विज्ञान की भूमिका, हिंदी व्यंग्य : बदलते प्रतिमान (शोध एवं समीक्षा)। सन 1936 को बाबली (उत्तरप्रदेश) में जन्मे तथा जलगॉव (महाराश्ट्र) में कार्यरत रहे डॉ. तेजपाल चौधरी आम आदमी के आक्रोश की कविताओं के जनक हैं ।

डॉ. तेजपाल जी ने अपने दो काव्य संग्रह 'कुंभकर्ण सो रहा है' तथा 'चौराहे पर गॉंधी' के माध्यम से अपने कवि मन का आक्रोश एवं वेदना मुखरित की हैं। चिंतन और व्यंग्य की धारधार शैली से आम आदमी की पीडा एवं आक्रोश अत्याधिक धनीभुत हो उठा है। अपनी इस रचंना निर्मिति के संदर्भ में वे स्पशठतः करते हैं, ''ये आम आदमी के आक्रोश की भी कविताऍं हैं, आम आदमी के प्रति कवि के आक्रोश की भी। आक्रोश राजनीति के प्रति, प्रशासन के प्रति, व्यवस्था के प्रति। मैं समझता हूॅं कि ये आक्रोश के सिवाय कुछ दे ही नही सकती ।आज के युग में जो भी शांत है, अनु दिग्न है, वह या तो हृदयहीन है या योगी । मैं उसे प्रणाम करता हूॅं। किंतु साहित्य का उद्देश्य आक्रोश उत्पन्न कर, विध्वंसंकों की फौज खडी करना नहीं होता। उसका काम तो पाठक की संवेदना को स्पर्श करना मात्र होता है। ये कविताऍं भी इसका अपवाद नही है। कविताओं का केंद्रीय स्वर व्यंग्य है। कही प्रहारात्मक कही हास्यात्मक तो कही चिंतनात्मक । ये आत्मानुभव की देन है, अतः इन में यथार्थ का स्पर्श सर्वत्र विद्यमान है''।

साहित्य निर्मिति बुध्दीजीवि एवं आम आदमी की बेवसी पर कलम चलाते डॉ. तेजपाल जी लिखते है, ''मैं स्वान्तः सुखाय के बहाने प्रेम और सौंदर्य की कविताऍं नही लिखता । मैं व्यक्तिगत तौर पर (और समीक्षक के नाते भी) ऐसे साहित्य को पलायन मानता हुॅं । हम अपने अपने सुख संसार में कैद, आसपास के दुखदर्द से बेखबर जो भी कुछ ऐसा लिखते हैं, या सोचते है वह हमे अपने सारस्वत कर्तव्य से दुर ले जाता है। आम आदमी की बेबसी यह है कि वह कुछ नही कर सकता । पर वह शोर मचानेवाले के स्वर में मिला सकता है। वह आज इतना कमजोर हो गया है कि पडोस के बंगले में माली लॉन पर पानी छिडकता रहता है और वर म्युनिसिपालिटी के नल से खाली बर्तन लिए चुपचाप लौट आता है। इतना ही नही वह भ्रश्ठ राजनैतिक नेता की विजय यात्रा में, जिसे उसने वोट नही दिया, सम्मिलित होकर, उसकी जयजयकार करता है। ये स्थितियॉं मुझे काफी बेचैन करती है, ... बुध्दिजीवी वर्ग इस मामले में शायद और भी अधिक दोशी है। उसने व्यवस्था की क्रुरताओं से समझौता कर लिया है। वह अपने तुच्छ स्वार्थों के लिए बुरे को बुरा कहने का साहस नही जुटा पाता। उसकी इसी कमजोरी का व्यवस्था के ठेकेदार भरपुर लाभ उठाते है । कभी उसे सम्पादक बनाकर वातानुलित ऑफीस मैं कैद कर देते है। तो कभी किसी विश्वविद्यालय के कुलगुरु को मुकुट पहनाकर मुॅंह पर पट्टी चिपका देते हैं, तो कभी बडे पुरस्कारों और सम्मानों से नवाज कर गूंगा बना देते ।'' 2

डॉ. तेजपाल जी ने व्यंग्यप्रधान शैली में अपनी वेदना और आक्रोश को शब्दांकित किया है। इस भूलोक पर फैले पाखंड, अनाचार, अधर्म, अशिक्षा तथा अविवेक को सोदाहरण प्रस्तुत कर, उनकी भीशणता की ओर पाठकों का ध्यान आत्कृश्ठ किया है। प्रकृति, संस्कृति, समाज, राजनीति व्यवहार, धर्म, अर्थ तथा शिक्षा क्षेत्र की पनशिलता के साथ आम आदमी की हतबलता पर इनकी कविताऍं भाश्य करती है।

सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय व्यंग्य के साथ उभरता आक्रोश –

आम जनता की भांति गॉव की मीट्टी एवं महान मूल्यों आदर्शों से जुडे कवि वर्तमान में होनेवाला सांस्कृतिक पतन देखकर दुखी होते हैं, यही दुख उनके आक्रोश का उद्गाता है। बापु से मेरा गॉव मेरे खेत, दुरदर्शन बनाम दुर्दशन, विज्ञापन संस्कृति, पंद्रह अगस्त, अंधेरे कि ओर, चौराहे पर गॉधी मुगल गार्डन जैसी कविताऍ सांस्कृतिक व्यंग्य एवं आक्रोश की परिचायिका हैं।

आम आदमी की व्यथा, वेदना छल, प्रताडना एवं पाखंड को उद्घाटित कहते 'बापु से' कवि कहते है –

''पूज्य बापू, तुम्हारी जयंति पर, तुम्हारे चरणों मे,
फुल चढाते हुवे, मेरे हाथ कांपते है ।
अहसास होता है, जैसे हम तुम्हे छल रहे है या शायद अपने आपको।
हम जो ये तुम्हारे उत्तराधिकारी, सब ने हत्या की है
तुम्हारे आदर्शों की, मूल्यों की, सपनों की।
इसलिए अंदर से कोई पुछता है, क्या अधिकार है हमे
अहिंसा के देवता की मूर्ती पर फुल चढाने का?
या उसके चरणों में श्रद्धा दीप जलाने का?
..... तुम्हारे मायाराम तेली, दयाराम जुलाहां,
सखाराम मोची और सदाराम लुहार
रात की पाली से लौटकर देसी दारु पीते है।
और उनकी बीवियॉ लौटती है।
राशन की दुकान से खाली थैला लेकर ...'' । 3

आज व्यक्ति के द्वारा होनेवाला सांस्कृतिक अधःपतन कवि के लिए असह्य हैं। आज के मनुश्य की बढती हुई भोगवादिता तथा उससे होता संस्कृति विनाश पर कवि स्पशठतः कहते है

'' मैं बेशर्म इश्तहारबाजों के बीच धीर गया हुॅ।
मायावी बक्से से झाकती है, असंख्य कठपुतलियॉ,
अनावृत्त होने को तत्पर स्वेच्छा से।
संस्कृति के चीर को तार तार करने का नियोजित अभियान
सह नही पाता हूॅ ।
साहित्य कला और संगीत के घरों में भी,
दस्युओं की तरह घुस आयी है, लाटरियॉ ।
उत्तर दीजिए ! इनाम लीजिए !!
प्रमाद और आलस्य की नशिली पुडियॉ
लिलती जा रही है, संपुर्ण पीढी को
और में, बेबस निरुपाय छटपटा रहा हूॅ
मंत्र विद्ध सर्प सा । '' 4

ताज अजंता तथा गंगा जैसे वैश्विक गरिमामयी संदर्भ भी आज भोगवादी एवं मार्केटमयि विकृति से अछुते नही रहे। 'विज्ञापन संस्कृति' में इन की पोल खोल ते हुए व्यंग्यकार कहते है,

'' गंगा का जल,ममता का ऑचल
ताज का वैभव, अजंता की कला
हर सुंदर चीज पर वणिको का शासन है।
जीवन का नियंता, उद्धता दुःशासन है।
हर घर ऑगन, धृतराश्ट्र का दरबार है
हर द्रौपदी विवस्त्र हैं, हर भीश्म लाचार है ।
सभ्यता का चीर फटकर, तार–तार है ।'' 5

कवि के ज्योतिर्मयी शब्दों में धुंधले होते हुवे सांस्कृतिक संदर्भों की गरिमा परिलक्षित होती है। पाठकों को चकाचौंध करानेवाली काव्यपंक्तियॉ होनेवाले सांस्कृतिक अंत की भीशणता प्रतिपादित कर, इस संदर्भ में सर्तक भी कराती है – 'अंधेरे कि ओर' में कवि कहते है –

'' उपनिशद कहते है – 'तमसो मा ज्योतिर्गमय ।'
परंतु कहॉ है ज्योति ?
सामने खडी हैं काली अंधियारी रात, मुॅह बाये।
हो चली हैं श्याम, परछाईया लम्बाती हुई
विलिन हो गई है अंधेरे में, ओर से छोर तक।
.... थोडी ही देर में अमावस्या की सुरसा
निगल जायेगी सबकुछ
खजुराहो एवं एलोरा का शिल्प ।
भरत नाट्यम और कथकली, कथ्थक और मणिपुरी
मौन हो जाएंगे राग । तरसेगी रागनियॉ
खो जाएंगे विधि विधान । टूट जाएंगी परम्पराऍ
खंडित हो जाएंगे पारिवारिक मूल्य और सामुदायिक आदर्श।'' 6

अनाज, कपडा, मकान, स्वास्थ, शिक्षा एवं स्वतंत्रता आदर्श संस्कृति के बुनियादी आधार होते है। आज इन बुनियादी आधारों में भ्रश्टाचार की वजह से विकृतियॉ आ रही है। जिनसे ये सांस्कृतिक आधार खोखले हो रहे हैं। मजबुरी एवं स्वार्थवश देश की अधिकांश जनता ने जीने के लिए इन से समझोता कर लिया है। फल स्वरुप एक खोखली एवं भ्रश्ट जीवनप्रणाली का स्वीकार अधिकांश लोग कर रहे हैं। इन स्थितियों से व्यथित और क्रोधित होकर आम व्यक्ति की दशा दर्शाते कवि कहते हैं –

''आखिर उसने समझ लिया, आझादी का अर्थ वह जान गया कि
रोटी का अर्थ है राशन की लंबी कतार ।
और छत का अर्थ है, बहते गंदे नाले के किनारे बनी झुग्गी,
जिसे हर छटे महिने, म्युनिसीपालिटी तोड जाती है।
शिक्षा का मतलब है, कुर्सी पर बैठकर ऊंघता एक अदद मास्टर।
वह समझ गया कि स्वास्थ का मतलब है हर तीसरे चौथे रविवार को,
पिलायी जानेवाली दवा की खुराक या एक रुपये की पर्ची के बदले मिलनेवाली चार सफेद गोलियॉ,
जो खडिया, मीट्टी या चूने से बनती है। उसकी मुट्टियॉ तन जाती है आक्रोश से,
परंतु उसमे ताकद नही कि वह एक दिन आझादी की गर्दन पकडकर उसे बताए
कि हमारे देश की सबसे बडी बिमारी भूख है।'' 7

आझादी का जश्न सबसे बडा सांस्कृतिक पर्व होता है। इस पर्व पर राश्ट्र की संस्कृति बोल उठती है। राश्ट्रीयता की मंगलमयी लहरे प्रेम, सेवा, त्याग, करुणा, समता, ममता और बलिदान की परिचारिका होती है। किंतु भारतीय स्वतंत्रता पर्व की मांगल्यता आज धुंधली हो चली है। समुचे वर्श में एकाद बार राश्ट्रीयता का बनावटी प्रदर्शन एक फैशन सा होता जा रहा हैं। भ्रश्टों के हाथों में देश की बागडोर देखकर इस राश्ट्रीय सांस्कृतिक महोत्सव के पाखंड पर व्यंग्य करते कवि कहते है।

''साहस नही होगा राश्टगीत गाने का
या मॉ के चरणों में आसुओं की भेट चढाने का।
मुझ से नही होता कि मेरे सामने कोई
खादी की सफेदी से ढक ले अपने दागों को
और मैं उसे सलाम करु।
मेरे पारदर्शी नजरों से नही छिप पाते
भ्रश्टाचार के छिद्रों पर लगे
पुरस्कारों और सम्मानो के पैबंद
मै नही देख सकता कि कोई मैले हाथों से
तिरंगा फहराये या लंगडी आजादी का जश्न मनाये।'' 8

कवि ने लोकजीवन के अनुरुप शब्दचित्रों के माध्यम से अतित की लोकसंस्कृति का स्मरण कराया है। कवि की पैनी दृश्टि में आज की सांस्कृतिक उपेक्षा एवं लाचारी छुटी नही है। पूर्वजों के समय में आलाव के इर्दगिर्द लगनेवाले लोगों के जमघट तथा आज के पबों के बारे में वे कहते हैं –

''दादाजी के जमाने में अलाव संगोश्टी लगाता था।

घटीत अघटित किस्सों की चर्चाऍ चलाता था।
'सुना है, सिंदुरी की बेटी मॉ बननेवाली है।
सिदधु का बेटा फौज से भाग आया है।
नहर का नया हकीम पुरा जल्लाद हैं .....
परंतु आज हर इलाके में ठंडा अलाव है
हर वक्त मौन है, स्तब्ध हर गॉव है।
उसकी जगह आबाद पब और बार हैं
सूनी चौपाल है संस्कृति लाचार है। – 9

लोगो के स्वच्छंद एवं बार्तुनी ह्रदयों की निर्मल वाणी आज पब और बारों में कुटिल एवं कठोर हो गई है। वाणी और व्यवहारों की निर्मलतावाला लोकसमुदाय आज पश्चिमी विकृतियों में पतनशिल होकर भी 'सभ्य' कहलाता रहा हैं इसपर कवि का आश्चर्य एवं आक्रोश बार बार उभर आता है।

समाजिक एवं धार्मिक व्यंग्य से प्रस्फुटित होता जन ज्वालामुखी –

डॉ. तेजपाल जी की कविता वर्तमान जनजीवन का साफसुथरा आईना है, जिससे वर्तमान समय का पाखंड, मिथ्याचार, स्वार्थांधता, भोगपिपासा एवं मूल्यहीनता अंतर बाह्य रुपों में नजर आती है। आधुनिक जीवन की नानाविध प्रतिमाऍ मानव में निहित पशुत्व को उजागर कराती हैं। इन्सान के भीतर बसे हुए हैवान एवं उसकी हैवानियत से हमारा साक्षात्कार कराती हैं। इस भोगपिपासा की दौड में अव्वल पहुॅचे भारतीय विजय वीरों की अनावृत्त तसवीरे प्रदर्शित कराकर इनसे होती हुई सामान्य जनों की दूरावस्था को ये कविताऍ स्वरांकित करती हैं।

'भीका चमार मर गया' नामक कविता सामाजिक विशमता, उत्पीडन, उपेक्षा, भूख एवं करुणा की ऐसी मिसाल है, जो वेदना के साथ आक्रोश और विद्रोह के ज्वालामुखी को प्रज्वलित कराती है। इस कविता में कवि कहते हैं –

''भीका चमार मर गया,
ग्राम विकास के नारे, समता और स्वतंत्रता का उद्‌घोश
आरक्षण का छलावा, घडियाली आसुओं का संचित कोश
जीवित रख नही पाये उस बेचारे कों
अखबारों ने कहा – उसने आत्महत्या कर ली,
जहरिली वनस्पतियॉ खाकर, पर मैं जानता हूॅ कि
वह जहर से नही भूख से मरा ।
सह नही पायी बुढी हड्डि‌यॉ रोज रोज के फाके,
पत्नी की बिमारी, बच्चों की चीख और
हमारी सहानुभूति की भीख
पीछे रहा गया खाद्यान्न में आत्मनिर्भर देश,
अनाज के सडते गोदाम, फोटो लगा मतदान कार्ड
और प्रश्नकाल का व्यर्थ प्रलाप
टी वी पर थिरकती रही आधुनिक अप्सराऍ
बजता रहा शराब में डूबा मादक संगीत
मय खाने में जलते रहे असंख्य दीप
और उसकी झोपडी में भर गया
सस्ते राकेल का इंतजार करता अंधकार, अनंत अंधकार
और वह मर गया, भीका चमार मर गया।'' 10

सामाजिक भ्रश्टाचार अब शिश्टाचार में परिवर्तित होने लगा है। जन एवं शासन स्तर पर इसे मान्यता एवं सम्मान मिलने के कारण प्रतिश्ठा का मानदंड बन रहा हैं। अधिकांश देशवासियों द्‌वारा इसे अपनाने से व्यंग्यकार इसे 'भावात्मक एकता' संबोधित करते हुवे कहते है –

''मामुलीराम ने दिवाली में सौ रुपये देकर रेशनकार्ड बनवाया
मुंबई में रामभरो से ने दस परसेंट में कर्जा मंजुर कराया
कलकत्ते में घोश ने अहमदाबाद में आशुतोश ने पॉच सौं का सिलिंडर एक हजार में पाया।
मद्रास में राघवन और लखनऊ में नंदन को
टी.सी. ने बर्थ का रेट सौ रुपये बताया ।
उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक
रिश्वत के रेट में फर्क नजर नही आया।
जिस व्यवस्था में हम सब रहते है, उसे भावात्मक एकता कहते है।'' – 11

आज रोजगार, पदोन्नति एवं सुख प्राप्ति के संदर्भ बदल गये हैं। अधिकतर भारतीय इन्हे पाने के लिए इतने लालायित हैं कि प्रचलित कुमार्गो को अपना कर स्वयं को धन्य मानने लगे हैं। एक व्यवहारिक दृश्य बिंब के माध्यम से वर्तमान के एक अधम जीवन प्रणाली का वर्णन करते कवि कहते है –

''अब उसके कैबिन में इजाजत लेकर जाता पडता है
और सहनी पडती है, काईयॉ होठों की कुरुप मुस्कान
मुस्कान, जो याद दिलाती है, कि कैरियर की दौड
एक आसुरी खेल है, जहॉ बेईमानी पर
लोग थू–थू नही, वाह वाह करते हैं
उसके परिवार से ही नही, कुत्ते से भी प्यार करो
वह बीन बजाता है तो ठुमका लगावो
वह रेंकता है, तो सुर में सुर मिलावो
न जाने गुलाम की कौन सी अदा उसे भा जाए
और आपके प्रमोशन का ऑर्डर आ जाए ।
आज के युग का यही मूलमंत्र है। यह भ्रश्ट प्रजातंत्र है।'' – 12

व्यक्तिगत एवं परिवारिक भ्रश्टाचार से ही सामाजिक तथा राश्ट्रीय घोटालों का जन्म होता है। दूर्भाग्यवश देश का अधिकतर आंतरिक जनमत भ्रश्टाचार की ओर झुका होने की वजह से भ्रश्टाचार में दिन प्रतिदिन बढौति होती जा रही है। व्यंग्यकार एक पुलिस दम्पति के माध्यम से यह तथ्य उजागर कराते तथा अपना आक्रोश प्रकट करते कवि कहते हैं –

''उस दिन जब हवलदार गणेशी खाली हाथ घर आया
तो बीवी ने उसे आडे हाथों लिया।
न चाय को पुछा न खाने को कुछ दिया।
बोली – जानते हो घर का क्या हाल है ?
न डिब्बे में चावल हैं न बरनी में दाल है ।
शक्कर का मालुम है क्या भाव है
और तुम्हे इमानदार बनने का चाव है ?
भारत में जन्म लेकर भ्रश्टाचार से डरते हो
सरकारी नोकरी को बदनाम करते हो
भारत और भ्रश्टाचार की तो एक ही राशी है
यहॉ कोन पाक–साफ और कोन संन्यासी है ?
करोडो का घोटाला कर अपराधी छुट जाता है
कुछ दिनो बाद जनता को याद नही आता है।
...... सुनकर गणेशजी की भुजाऍ फडकने लगी
छाती चौडी हो गयी, सारी कमजोरी जाने कहॉ खो गयी ।
बोला 'मैं भी पुलिसिया चरित्र अपनाऊॅगा और
खाली हाथ कभी घर नही आऊॅगा । कभी पकडा गया तो
रिश्वत देकर छुट जाऊॅगा ।
पत्नी मुस्कारायी और पति के लिए चाय लेआयी ।'' – 13

कविने आज के संवेदना शुन्य, वेतनभोगी एवं कुपमंडूपि शीक्षित समाजपर तीव्र व्यंग्य करते हुवे शिक्षित वर्ग को ही मूल्य आदर्शों की दूर्दशा के लिये सर्वाधिक दोशी पाया है। वेतन एवं सुविधा भोगी शीक्षित वर्ग ही आज का कुंभकर्ण है, जो स्वसपनों की घनी नींद सो रहा है, जिसे उसके इर्दगिर्द का शोर–शराबा, आतंक

तथा अभाव बिल्कुल दिखाई नही देता । ऐसे मतलबी वेतन भोगी समाज पर ताने कसते हुवे कवि कहते हैं –

''कभी किसी की चीख बहुत तेज हो जाती है तो
कस कर बंद कर लेता है, दोनो कन दोनो ऑखे
और बंद कर लेता है, बाहर की ओर खुलनेवाली सारी खिडकियॉ
ताकि किसी की पीडा प्रवेश न कर सके उसके स्वप्न संसार में
भंग न हो पाये, उसकी आत्म केंद्रित निद्रा साधना,
जिसपर केवल उसका एकाधिकार है।
उसका वेतन, उसके भत्ते, उसका प्रमोशन, उसकी समितियॉ
उसके आयोग, उसके पुरस्कार, उसकी बीवी, उसके बच्चे ।
इनसे बाहर का संसार, उसके लिए अलक्ष्य है।
अयथार्थ है, वेदांत की माया की तरह
.... उस दिन उठके पडोस में, रसोईघर में जलमरी एक सीता
और वह सोता रहा !
एक दिन उसकी खिडकी के नीचे एक अभिमन्यु की हत्या कर
भाग गये सात शस्त्रधारी महारथी, और वह सोता रहा।
एक द्रौपदी का अपहरण कर ले गये कुछ दु:शासन
और वह बंधा रहा अपनी परिवार निश्ठा से
कुछ भी होता रहे, देशपर शत्रु का आक्रमण
भूकंप का तांडव, बाद का प्रकोप, साम्प्रदायिक दंगे
उसकी परिवार निश्ठा में बाधा नही आनी चाहिए।
उसके लिए ये सब खबरे है, चाय के साथ गटकने के लिए
.....मुखौटो और कवचों के गर्भागार में बंद हो जावो
त्यक्त लज्ज: सुखी भवेत।'' – 14

कवि ने धर्म की अभिव्यक्ति मानव एवं मानवता के आधार पर की है। उन्होने बुद्ध्द की करुणावाले मानव धर्म पर जोर देकर धर्म के नामपर चलनेवाले आतंकवाद पर कडे प्रहार किये है। धर्म के नामपर होनेवाले विध्वंस को देखकर अत्याचारियों को फटकारते हुवे कवि कहते है –

''हमारा धर्म मानव है
परंतु हमारी क्षमा को कोई कमजोरी समझे हमे मंजुर नही
हम किसी शिशुपाल की सौ से अधिक गलतियों को
क्षमा नही करते। उनसे कहो, शत्रु को पनाह देना बंद करे
रोके खुनी खेल, निरपराध हत्याओं का।
नहीं तो धर्म युद्ध लडना हमे भी आता है।
अगर फूॅक मारेगी भारत माता की कोटी कोटी संतान
तो घास के तिनके की तरह, उड जाएगा तुम्हारा जेहादी अभिमान
और बचाने नही आएगा कोई पश्चिमी आंका
मृत्यु की घडियों में'' । – 15

कवि ने मुस्लिम तथा हिंदु आतंकवादियों की मनोरुग्णता, उसकी पार्श्वभूमि तथा धर्माभिमानियों का पाखंड का भी पर्दा फाश किया है। आतंकवादि नामक कवितों में वैद्यकिय शिक्षा ग्रहण किये उच्च विद्याभूशित किंतु आतंकवादि बने युवक के संदर्भ में कवि कहते है –

''वह ग्रेज्युएट था बल्कि पोस्ट ग्रेज्युएट
पर क्या करे हर नौकरी पहुॅच के बाहर थी।
पॉच साल बीत गए, और उसके सहपाठी
गले में स्टेथस्कोप लटकाये घुमते है, और वह बेकार हैं।
एक दिन चमत्कारी बाबा से टकराया, उसने मीन मेश का हिसाब लगाया।
बोले हम तुम्हे काम दे सकते हैं
दिमाग हमारा, हाथ तुम्हारे, काम हमारे, साथ हिंसा का धंदा करो।
दस परसेंट मिलेगा। जी, मैं अहिंसक हूॅ।
गांधी बाबा का शिश्य, तो भूखो मरो
मजबुरन वह राजी हो गया
और देश का भविश्य अंधेरी गलियों में खो गया।'' –16

राजनैतिक एवं व्यावहारिक व्यंग्य द्वारा उद्घाटित अधम कर्म –

तेजपालजी की कविता व्यवहारिक विशमताओंपर सर्वाधिक प्रहार करती है। आज व्यावहारिक क्षेत्र में हो आम आमदी सर्वाधिक लुटा और पीसा जा रहा है। सामानय प्रजाजनों को ठगने और लुटने की मानो हर तरफ होड लगी है। इस होड में राजनीति एवं राजनेता अग्रणी है। कवि ने वर्तमान राजनेताओं की पोल खोलकर उनकी भ्रश्ठ काया और मैली आत्मा के वास्तविक चित्र प्रस्तुत किये है। कवि ने पाखंडी राजनेता, भ्रश्ठ राजनीति एवं त्रस्त जनता की भीशण व्यावहारिकता शब्द बद्ध की है। कवि ने बिगडते हुवे गणतंत्र और चुनाव में खडे रहकर चुनकर जानेवाले मंत्रियों पर भाश्य करते लिखता है–

''चुनाव से पहले पार्टी के दफ्तर के बाहर
एक गधा कर रहा था, चुनावी टिकट का इंतजार
देखकर पास आया एक युवा पत्रकार
व्यंग्य से बोला 'आपको भी टिकट चाहिए मेरी सरकार'
गधे ने कहा 'हम किसी से किस बात में कम है' ?
आप व्हिस्की है, तो हम रम हैं।
असेम्बली में हम ज्यादा गला फाड सकते हैं।
दल बदलने में हम सभी को पछांड सकते हैं।
हातापायी कर सकते है, दुलत्ती झाड सकते है।'' – 17

कवि ने आज के अधिकांश शासकों की भ्रश्ठाचारी वृत्तियों का पर्दाफाश कर उनके भीतर की कुप्रवृत्तियों का अंबार लगाया है, जो विवेकी व्यक्ति को झकझोर देता है। मूर्ति के माध्यम से नेता की तसवीर की तहे खोलते कवि व्यंग्य करते कहते हैं –

''हर इन्सान अब तुम्हे अंदर तक जानता है।
तुम्हारे छल छदम और चरित्र को पहचानता है।
न जाने तुमने कितनी ऑखो को रुलाया है।
भूखे और गरिबी का कहर बरसाया है।
प्रजातंत्र और जनतंत्र का लेकर नाम
शोशण कर मोहक जाल फैलाया है।
हर बेबस का कीमती नोट हथियाने को,
हर बार वायदों का अंबर लगाया है। .... '' – 18
''. . . . हर नेता, जिसका कुर्सी से नाता है
धुमधाम से अपना जन्मदिन मनाता है।
पैसे जुटाने को वह अपना कुपन छपाता है
भिखारी और मोची तक से चंदा उगाहता है।–19

'दर्पण झूठ न बोले' कविता में राजनेता की वास्तविक तथा विकृत छबियों का बुरखा फाड, उन्हे प्रकाशित करते कवि कहते है–

''नेता ने और कुछ दिन दर्पण को आजमाया
प्रतिदिन एक नया चेहरा नजर आया।
उल्लु, बगुला, केंचुआ, सियार,
परंतु गधे की छबि बार बार, अब बात बर्दाशत से बाहर हो गई,
नेताजी की रग रग उत्तेजित हो गई,
उन्होने मन ही मन शैतान को पुकारा
और फुलदान उठाकर दर्पण में दे मारा ....''

आम आदमी की भाति कवि ने भी जान लिया है कि, आजकाल दिल्ली भ्रश्टाचारियों का केंद्र बन गया है। इन भ्रश्टाचारियों को सामान्य जनता के सुख दुखों से कोई लेना देना

नही है। आम लोगों की मेहनत की कमाई पर तथा दीनदलितों का शोशण पर देश की राजधानी एवं राजनेता पलकर भ्रश्ट हो रहे है। इसीलिए में कवि व्यंग्य से कहते है –

'आज राजधानी में जो कुछ होता है, स्व के लिए ही होता है
स्व के लिए ही बनते है कानुन,
स्व के लिए ही बनते है बजट। जो नेता एक बार चुनाव
जीतकर
राजधानी चला जाता है, वह पेट फट जाने तक
देश को खाता है।'' – 20

देश के राजनेताओं की वोट प्राप्त करने की धूर्तता तथा भोली भाली जनता के ऑखों में धुल उडाकर, उनकी भावनाओं के साथ घोर खिलवाड करना अधिकतर राजनेताओं की, पुश्तैनी परम्परा रही है जिसे सामान्य जनता समझ नही पाती है। भूख, प्यासी एवं अभावग्रस्त जनता को सपनों की दलदल में धकेलकर खुद की पीढियों का उद्धार करने में ही अधिकतर राजनेता लगे है। इन्ही प्रवृतियों को उद्घाटित करते 'एक गुलाब का कर्ज' में एक पुश्तेनी परम्परा के संदर्भ में कहा हैं –

''वह गुलाब, अद्भुत थी उसकी महक, अदब थी उसकी
आब
गुलाब जब हाथ उठाकर मुस्काराता था,
ते महिना भर भूख सहने की ताकद दे जाता था।
फिर एक दिन गुलाब हमे छोडकर चला गया।
........नई देशभक्ति, वह भी बच्चों के गाल थपथपाती हैं।
जहॉ दुर्घटना हो, पहले पहूॅच जाती हैं।
मुॅह लटकाने में अपना क्या जाता हैं ?
भावुक लोगों का वोट पक्का हो जाता हैं।
गुलाब भक्त उसकी अदा पर कुर्बान हैं।
मतदाता उसकी मुस्कान पर गुलाब के गुण गाता है।
'परिवार वाद' जनतंत्रपर पड गया भारी है।
अब चौथे पीढि के अभिशेक की तैयारी है।'' – 21

आज देश के अधिकतर शासकों को देश और देश वासियों की समस्याओं तथा उनकी प्रगति से कोई लेना देना नही है। आम जनता घृणित समाज व्यवस्था की बली बनती जा रही है। अंधे एवं कुपमंडूपी बने जल्लाद राजनेता आम जनता की निश्पाप भावनाओं को पैरों तले कुचलकर उच्छृखंल होते जा रहे हैं। नेताओं की इसी उच्छृखलता एवं घमंड का पर्दाफाश करते हुवे कवि कहते हैं –

''खडे हो गये उॅचे उॅचे होर्डिंग, बौने नेताओं के
डिजिटल चेहरों पर धूर्त मुस्कान लिए । मानो कह रहे
हो, 'तुम्हारा काम वोट देना, हमारा काम हुकूमत करना
। और वोट नही भी देंगे, तो क्या बिगाड लोगे ?
चंद नपुंसक बुद्धिजिवियों के विरोध से क्या बनता बिडगता है ?
हमारे साथ जनता है। जिसके प्रौढशिक्षा का नाटक भी
चलता रहे और चुनाव का गणित भी न गडबडाये।''– 22

डॉ. तेजपाल चौधरी की रचनाओं में कवि, व्यंग्यकार एवं तत्वचिंतक के व्यक्तित्व का समन्वय होने से ये बहुआयामी प्रतीत होती हैं। अतित से निकली हुई रचनाकार की दृश्टि वर्तमान की विकृत एवं विशैली समाज रचना के अनावृत्त चित्र प्रस्तुत करती हैं। आज की राजनीति, धर्म, अर्थप्रणाली, शासन व्यवस्था, कुपमंडूप शिक्षित वर्ग, स्वार्थांध समाज, आमजनता एवं कवि का आक्रोश इन कविताओं में प्रतिबिंबित होता हैं। इसलिए स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य में ये रचनाएॅ अपना प्रभाव छोडे बिना नही रहती। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य के संदर्भ कवि का मानना हैं, ''स्वातंत्र्योंत्तर काल की बदलती स्थितियॉ एक बार फिर व्यंग्य को प्रहारात्मकता की ओर ले जाती हैं। परंतु इसबार न तो वह वैयक्तिक छिद्रान्वेशण तक सीमित रहता हैं और नही धार्मिक आंडबरों तक । शासन, प्रशासन, साहित्य, संस्कृति, शिक्षा, मनोरंजन मतलब वह आचार व्यवहार के हर कोने तक पहूॅच जाता हैं। आक्रोश उत्पन्न करने के लक्ष्य से एक कदम आगे बढकर वह चिंतन को उद्बुद्ध करता हैं। और जीवन तथा जगत के सम्बध में नई दृश्टि देता हैं। समग्रता आधुनिक व्यंग्य की सर्वोपरि विशेशता है। पहले व्यंग्य जीवन के विकृत पहलुओं को टुकडोंटुकडों में चित्रित करता था, जब की आज वह समग्र भ्रश्ठ एवं विकृत व्यवस्था को अपने फोकस में समेटने का प्रयास करता हैं। – 23

निष्कर्ष :–

1) डॉ. तेजपाल चौधरी स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य साहित्य के सक्षम हस्ताक्षर है।

2) डॉ. तेजपाल जी ने मात्र दो काव्य संग्रहों के माध्यम से वर्तमान जीवन की विशमता, पाखंड, एवं असहायता मार्मिकता से अभिव्यक्त की है।

3) कवि के व्यंग्य प्रधान आक्रोश का मुख्य लक्ष्य व्यक्ति, समाज एवं राश्ट्र की घिनौनी बनती जा रही 'प्रतिमाओं में परिवर्तन' हैं।

4) डॉ. तेजपाल जी देश के आम मनुश्य के अभाव, असहायता एवं आक्रोश के रचयिता है।

5) कवि की दोनो व्यंग्यप्रधान रचानाएॅ सांस्कृतिक आस्था आदर्श, संस्कार तथा मूल्यों के विघटन की जीति जागती प्रतिमाएॅ हैं।

6) 'कुंभकर्ण सो रहा है' वर्तमान कालिन स्वार्थांध, कुपमंडूपि, एवं सुविधा भोगी अविवेकी समाज का प्रतीक है।

7) 'चौराहे पर गॉधी' देश की राश्ट्रीय, आंतरराश्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दूर्दशा का वास्तवादि शब्दबिंब है।

8) रचनाकार की दृश्टि से आज की बिगडती एवं पतनशिल समाज व्यवस्था को भ्रश्ट राजनीति एवं पाखंडी राजनेता जिम्मेदार है।

9) कविने 'भीका चमार मर गया' के माध्यम से देश के दीनदालितों की हतबलता, वेदना एवं अभाव ग्रस्तता के कारुणिक एवं व्यंग्यपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत किए हैं।

10) रचनाकार ने भ्रश्ट शासन एवं कुपमंडूपि समाजप्रणाली का हु ब हु चित्रण कर, असहाय जनता में समाज परिवर्तन की चेतना निर्माण करने का प्रयास किया हैं।

11) कविने व्यंग्यप्रधान आक्रोश के साथ लोकजीवन एवं गरिमामयी संस्कृति के चित्र साकार किए हैं, जो सांस्कृतिक दस्तावेज हैं।

संदर्भ

1) भूमिका, 'कुंभकर्ण सो रहा है', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004
2) भूमिका, 'कुंभकर्ण सो रहा है', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004
3) पृश्ठ संख्या – 9, 10 भूमिका, 'कुंभकर्ण सो रहा है', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004
4) पृश्ठ संख्या – 77, 78 भूमिका, 'कुंभकर्ण सो रहा है', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004
5) पृश्ठ संख्या – 87, 88 भूमिका, 'कुंभकर्ण सो रहा है', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004
6) पृश्ठ संख्या – 11, 12 'चौराहे पर गॉधी', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2010
7) पृश्ठ संख्या – 14, 15 'चौराहे पर गॉधी', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2010
8) पृश्ठ संख्या – 38, 39 'चौराहे पर गॉधी', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2010
9) पृश्ठ संख्या – 9, 'चौराहे पर गॉधी', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2010
10) पृश्ठ संख्या – 48, 49 'कुंभकर्ण सो रहा है', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004

11) पृश्ठ संख्या – 56 'कुंभकर्ण सो रहा है', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004
12) पृश्ठ संख्या – 60, 61 'कुंभकर्ण सो रहा है', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004
13) पृश्ठ संख्या – 66, 67 'कुंभकर्ण सो रहा है', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004
14) पृश्ठ संख्या – 104, 105 'कुंभकर्ण सो रहा है', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004
15) पृश्ठ संख्या – 41, 42 'कुंभकर्ण सो रहा है', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004
16) पृश्ठ संख्या – 34, 35 'कुंभकर्ण सो रहा है', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004
17) पृश्ठ संख्या – 28 'कुंभकर्ण सो रहा है', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004
18) पृश्ठ संख्या – 68 'कुंभकर्ण सो रहा है', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004
19) पृश्ठ संख्या – 93 'कुंभकर्ण सो रहा है', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2004
20) पृश्ठ संख्या – 38 'चौराहे पर गॉधी', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2010
21) पृश्ठ संख्या – 25, 26 'चौराहे पर गॉधी', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2010
22) पृश्ठ संख्या – 32 'चौराहे पर गॉधी', डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2010
23) पृश्ठ संख्या – भूमिका, 'हिंदी व्यंग्यः बदलते प्रतिमान', डॉ. तेजपाल चौधरी, पंचशिल प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 2003

यह शोध प्रपत्र अप्रकाशित हैं, प्रकाशन हेतु इसे अन्यत्र प्रेशित नही किया है।